व्यवसाय मूल्यों की कीमत पर नहीं

अक्टूबर से मार्च तक छ: महीने हो गये हैं जब से मीडिया में मोदी, केजरीवाल और राहुल अविराम जगह पा रहे हैं। ऐसा लगता है कि मीडिया के लिए यही खबर है। मीडिया को यह भी लगता है कि लोग इसी खबर के लिए उसे पसंद करते हैं। इतने दिनों में कुछ अन्य भी पहली **खबरे** बनी तो हैं पर उनका टिकना उतना नहीं रहा है जितना इनका रहा है। अभी दो महीने बाकी हैं। लोकसभा के चुनाव के बाद शायद कोई ऐसा ही अन्य अविराम मुद्दा इनका स्थान ले ले। कोई भी ऐसा मामला, घटना या व्यक्ति जो द्वंद या सनसनी अथवा जुगुप्सा की संभावना से भरापूरा हो, मीडिया उसे निरंतर और अविराम चलाता है, खबर बनाते हुए। कभी किसी ने खबर को परिभाषित करते हुए संभवत: इसीलिए कहा होगा कि जो बेची जा सके, वह खबर है। मीडिया ने शायद इस परिभाषा को संशोधन के साथ अपनी भूमिका के मामले में कंठस्थ कर रखा है। टीआरपी और पाठक संख्या इस मामले में समानार्थी हैं। इस सब के बीच वे बातें जो लोकतंत्र और लोगों को विचारवान बनाने तथा उनका अपना मत बनाने के लिए, वह सब बताना जो आवश्यक है, गौण हो गई हैं। विकास और मानवीय मूल्यों के संदर्भ में उसकी भूमिका काफी कमजोर है। वह ऐसी नहीं है कि लोग मानवीय मूल्यों की तरफ लगातार दृढ़ता से बढ़ें और सकारात्मक एवं मूल्य धारक विकास के लिए सरकार की योजनाओं में हस्तक्षेप कर सकें।

जब यह कहा जाता है कि समाज से मूल्य गायब हो रहे हैं और हिंसा, व्यभिचार और भोग लगातार बढ़ रहे हैं तो इसके लिए मीडिया अपनी कोई भूमिका नहीं स्वीकार करता है। समाज की वर्तमान हालत के लिए वह समाज को ही जिम्मेदार ठहराता है। अपने कथ्य को वह आइना दिखाना ही मानता है। अक्सर यह दोहराया जाता है कि जो समाज में हो रहा है, मीडिया उसे ही तो दिखाता है। ऐसा कहते हुए वह सकारात्मकता के संदर्भ में अपने यानी मीडिया के प्रभाव से बचता है और बाजार के सामने वह समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को खुलकर स्वीकार करता है। हालांकि अब यह तथ्य है कि मीडिया लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ता है और लोग उसके कथ्य को अपनी तरह से स्वीकार भी करते हैं। उसके व्यवसाय पक्ष से जुड़े लोग, जिस तरह से मीडिया की विषय वस्तु को बाजार और उपभोग के पक्ष में तैयार कराने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करते जा रहे हैं, वह इसी का एक हिस्सा है।

मीडिया के बारे में बताया तो यह जाता रहा है कि उसका होना मनोरंजन नहीं है। वह लोगों की तरफदारी या विरोध के लिए भी नहीं है। वह ऐसा मंच भी न बने कि जिस पर लोग अपने मनमर्जी तथा निहित स्वार्थ की बातों को ही कहते रहें और वह सिर्फ उनकी ढपलियों को ही स्वर देता रहे। ऐसी ही भूमिका जब उसकी होने लगे तब महात्मा गांधी की याद आती है। दक्षिण अफ्रीका में जब भारतीयों के अधिकारों के लिए अंग्रेजों के समाचारपत्रों में उन्होंने अपने लेख

लिखे और उन्हें बेअसर पाया तब ही तो इंडियन ओपीनियन उनके लिए एक अनिवार्य उपाय लगा। उन्होंने कहा भी कि समाचारपत्र लोगों को जागरूक करने का उपाय या माध्यम है। उसका मकसद लोगों की सेवा होना चाहिये। वह ऐसा व्यवसाय कदापि नहीं हो सकता जिससे व्यवसायी को तो लाभ हो पर उसका उपयोग करने वाला उसके व्यवसाय-लाभ के लिए उपयोग में आता रहे। ईमानदारी से मीडिया की वर्तमान भूमिका और उसके मूल्यों की समीक्षा करें तो यह बहुत साफ हो जायेगा कि लोग उसके लिए उपभोक्ता ही हैं।

कुछ समय पहले रायटर इंस्टीट्यूट ने मीडिया की भूमिका पर अध्ययन किया था। उसने जानना चाहा था कि मीडिया लोकतंत्र को मजबूत करने में क्या भूमिका निभा रहा है। उसका यह अध्ययन ज्यादातर उन देशों से संबंधित रहा है जहां लोकतंत्रीय प्रणाली काम कर रही है। इस अध्ययन से यह पता चला है कि मीडिया का लोकतंत्रात्मकता के विकास में बहुत कम योगदान रहा है। उसने सत्ता, स्वार्थ और बाजार को जिस तरह से मजबूत किया है, उसकी तुलना में लोकतंत्रीय भावना का विकास लोगों के बीच नहीं हो पाया है। लगभग ऐसा ही प्रभाव विकास और मूल्यों के संदर्भ में अनुभव किया गया है। मूल्यों पर काम कर रहे एक अध्येता ने तो यह भी कहा है कि जिस तरह से अब मीडिया अपने समाचार और विचारों को प्रस्तुत करता है, उसका भी अध्ययन किया जाना चाहिये क्योंकि ऐसा लगता है कि उसकी प्रस्तुति से भी उसके उपयोग करने वाले अपनी तरह से उनकी व्याख्या करने लगे हैं। तात्पर्य यह है कि मीडिया अपने कथ्य और प्रस्तुति में लोगों को सकारात्मकता तथा मानवीय मूल्यों की ओर उस तेजी और दृढ़ता से प्रेरित नहीं करता है जिस तेजी से वह बाजार, सत्ता और निहित स्वार्थ को मदद करता है। उसका यह कथ्य-प्रवाह मीडिया के उन मूल्यों को न केवल कमजोर करता है, वरन इस संदर्भ में उसकी विश्वसनीयता तथा प्राथमिकता से हटता हुआ नजर आया है।

तब इस बारे में क्या किया जाना चाहिये? हम इस पक्ष में तो कतई नहीं हैं कि मीडिया एक व्यवसाय है और उसे अपना व्यवसाय अन्य उपभोक्ता व्यवसायों की तरह मुनाफे को केन्द्र में रखकर करने देना चाहिये। मीडिया की अर्थ व्यवस्था कई बार इस पक्ष की पैरवी करती है। पर यह भी तो सही है कि किसी अन्य उत्पाद के दो **स्रोत** नहीं होते हैं। फिर उसकी जैविकता के लिए उसका व्यवसायपन बना रहे पर साथ ही उसकी मूल और आकांक्षित भूमिका भी विसर्जित न हो पाये। यानी उसका लोकतंत्र की भावना को लोगों में पैठाना, उन्हें जागरूक करना और मानवीय मूल्यों को उसके केन्द्र में लाना मुख्य होना चाहिये। उसका व्यवसाय इन सब की कीमत पर न हो यह सुनिश्चित करना होगा। इसके लिए उन सभी को मिलकर काम करना होगा जो मीडिया को ऐसा अस्त्र बनाये जाने के पक्षधर हैं।

****